International Journal of New Media Studies (IJNMS), ISSN: 2394-4331
Volume 10 Issue 1, January-June, 2023, Impact Factor: 7.786

हरियाणा की संगीत परम्परा में सांग की उत्पत्ति एवं विकास

उषा

शोधार्थी पीएच०डी०, संगीत एवं नृत्य विभाग, कुरूक्षेत्र विश्वविधालय, कुरुक्षेत्र

शोधपत्र सार

सांग का इतिहास बहुत प्राचीन है। यह विधा अलग–2 रूप में वैदिक काल से ही प्रचलन में रही तथा सम्पूर्ण उत्तरी भारत में यह विधा अलग–अलग क्षेत्रों में विभिन्न नामों से प्रचलित है। वैसेतो हरियाणा में ही लोक नाटय के विभिन्न छोटे–छोटे रूप देखने को मिल जाते हैं। डॉ० पूर्णचंद शर्मा ने इन सभी को हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य परम्परा के अन्तर्गत रखते हुए उसका विस्तार में वर्णन किया है। इन लोक धर्मी नाटयों में उन्होने भाण्ड नृत्य, कठपुतली, खोडिया, सांग इत्यादि का वर्णन किया है।[1]

हरियाणा में सांग का विकास

सांग या स्वांग को हरियाणा का कौमी नाट्य कहा जा सकता है। रजरजंनकारी यह विधा हरियाणा के लोकमानस पर जादू का सा प्रभाव डालती है। इसमें रंगमंच के चारों ओर बैठे दर्शक, रागनियों की स्वर लहरियों मे अनुस्यूत एवं वाद्य–संगीत स्नाता कथा को देख सुनकर मंत्र मुग्ध हो जाते है। तख्त तोडनाच, गलवहियां तथा घूंघट के फटकारे जनता की वर्णातींत वाही–वाही लूटते हैं। पाँच–छः घण्टे तक निरंतर होने वाले इस प्रदर्शन में पुरुष ही नायक तथा नायिका की भूमिका लिंगानुरूप वेशभूषा में निभाते हैं।[2]

सांग की उत्पत्ति के विषय में ऐसा माना जाता है कि सांग के उद्भव से पूर्व समाज के सम्पन व्यक्ति विशिष्ट अवसरों पर मनोरंजन के लिए नक्कालों और वेश्याओं को आमंत्रित करते थे। नक्काल भांति–भांति से लोगों की नकले बनाकर दर्शकों का मनोरंजन करते थे जबकि वैश्याएं अपने नृत्य तथा मुजरे से जन समूह का मन मोह लेती थी। ये दोनो ही श्रेणियां समाज में ही हीन दृष्टि से देखी जाती थी। परंतु आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति विवाह आदि के अवसर पर इनको बुलाकर अपने अतिथियों का मनोरंजन करना अपनी प्रतिष्ठा प्रदर्शन का हेतु मानते थे। मनोरंजन का यह माध्यम केवल सम्पन्न परिवारों तक ही सीमित था जबकि 'नकल' के माध्यम से जन–साधारण अपना मन बहलाता था।[3]

श्री राजाराम शास्त्री का कथन है कि ''सम्पन्न परिवारों में विवाह आदि के अवसर 'मुजरा' करवाना उस व्यक्ति सम्पन्नता एवं प्रतिष्ठा की प्राप्ति कर ली जाती थी, धीरे–धीरे वेश्याओं ने भी अपने नृत्य के बीच नकल, नाटकीयता और अभिनय को समाविष्ट करना आरंभ कर दिया अथवा नक्कालों ने नर्तकियों का रूप धारण करके लोगो का मनोरंजन करने का प्रयत्न किया। काल कर्म में यह प्रयत्न धीरे–धीरे सांग के रूप में परिवर्तित हो गया क्योकि लैला–मजनू आदि श्रृंगार पटकथाओ का नृत्य और अभिनय युक्त प्रदर्शन पुरुषों द्वारा स्त्री वेशभूषा से सम्पन्न किया जाने लगा।''[4]

एक अन्य वर्ग के खोजियों का मत है कि हरियाणा में सांग शैली का उद्गम भजनी मण्डलियों की देन है। डॉ० शंकर लाल यादव ने इस तथ्य का विवेचन करते हुए कहा है :– हरियाणा में आधुनिक सांगों के प्रतिष्ठापक पं० दीपचंद से पहले दो सांगी रामलाल खटीक (सोनीपत) नेतराम (असमापला) प्रसिद्ध सांगी हुए है। वे आरम्भ में दोनों भजनीक थे बाद में सांगी बने थे। इस सदंर्भ में उन्होनें एक घटना का उल्लेख किया कि एक बार की बात है कि पं० नेतराम किसी गांव में भगवत कथा कर रहे थे। अनेक नर–नारियां कथामृत पान करनेआते थे। उन्ही दिनों उस गांव में तमाशा करने वाला किशनलाल, (खेडी, मेरठ) वहां आया तथा उसने अपने स्वांग का प्रदर्शन किया। स्वांग का ग्रामीण जनता पर ऐसा जादू यहां कि कथा में कतिपय वृद्ध भक्तो के अतिरिक्त कोई रूचि न लेता। दक्षिणा तक के लाले पड़ गए। इस घटना से कथावाचक पं० नेतराम जी को बड़ी खिन्नता हुई और वे अत्यंत निराश हुए। बस उन्होनें कथा को प्रणाम किया और अपनी सर्जनात्मक शक्ति सांग को समर्पित कर दी। सीला सेठाणी सांग का प्रथम अभिनय हुआ। यह उस समय के अभिनीत खेलों से जो अशंतः भजन होते थे अशंतः सांग, अपेक्षा से उच्च कोटि का था। यदि इस घटना को प्रमाणित मान लिया जाए तो हरियाणा बोली का पहला सांग 'सीला सेठाणी' को स्वीकार करना होगा जिसकी प्रथम प्रस्तुति बीसवीं सदी के पहले दशक में आंकी

जा सकती है।[5]

डॉ० ओझा के अनुसार ''हरियाणा में सांगों की परम्परा सर्वप्रथम हुई थी।'' उनका कहना था कि ''महम काल में सादुल्ला नामक एक प्रसिद्ध लोक कवि हरियाणा प्रांत्त में उत्पन्न हुआ। जिस प्रकार बारहवीं–तेरहवीं शताब्दी में अब्दुल्ला रहमान कवि ने अपभ्रंश में 'सन्देह रासक' की रचना की, उसी प्रकार सादुल्ला नामक कवि ने अनेक लोक गीतों और लोक–नाटकों की रचना की।''[6]

सांग सम्राट पं० लखमीचंद के शिष्य पं० मांगेराम ने अपनी एक रागनी के माध्यम से हरियाणा की सांग परम्परा के इतिहास व स्वरूप पर प्रकाश डाला है :–

हरियाणा की कहाणी सुजलयो दो सौ साल की
कई किस्म की हवा चालगी नई चाल की।। टेक।।
एक ढोलकीया एक सांरगिया अड़े रहे थे। एक जनाना एक मर्दाना दो खड़े रहे थे। पंद्रह–सोल्हं कूगंर जडकै खड़े रहै थे। गली अर गितवाढ्या के म्ह बड़े रहै थे। सब तै पहलम या चतराई किशन लाल की।।[7]

इस रागनी में पं० मांगेराम ने हरियाणा की सांग परम्परा को लगभग दो सौ वर्ष पुरानी माना है। उनके अनुसार सांग परम्परा को 1750 के आस–पास किशन लाल भाट ने शुरू किया गया था। पं० मांगेराम की यह रागनी 1950 के आसपास की मान सकते हैं क्योंकि यह उनके जीवन का मध्यकाल था।

सागों का कथानक

सांगों में कथानकों को चुनने में किसी प्रकार की कोई पाबंदी नही होती। सांगका विषय कोई भी हो सकता है। ये रचनाकार पर निर्भर करता है कि वह किस कथानक पर सांग रचना करता है। सांग के कथानक पर उसके निर्माता को रूचि और उस विषय में कितना ज्ञान है इस बात का पूर्ण असर देखने को मिलता है। क्योकि प्रतिपाद की सम्प्रेषणीयता आनी तभी सम्भव है जब ग्रहित कथा रचनाकार के मानस–प्रवाह से सामंजस्य रखती हो। सांग प्रबधा पेक्षी नाट्य विधा है। शास्त्रीय वर्गीकरण की दृष्टि से इसे हम काव्य नाटक कह सकते है। इसमें किसी कथा–विशेष को ग्रहण करके उसमें मार्मिक स्थलों को काव्यबद्ध किया जाता है।[8]

सांग का विषय कोई भी हो सकता है। श्री राजाराम शास्त्री का कथन है कि ''लोकनाटयकार कथानक का कोई बधन नहीं मानता। वह उपयुक्त जंचने पर अपना कथानक पुराण से ले सकता है। वह काल्पनिक राजा–महाराजा का संबधं किसी भी राजघराने से जोड़ सकता है। क्योकि उसका लक्ष्य इतिहास कहना मात्र नहीं, अपितु भावाभिव्यक्ति है और यही कारण है कि उसका लक्ष्य कथानक इतिहास सिद्ध न होते हुए भी अमर रहता है। उसके लिए देश–विदेश का कोई बंधन नही। इसलिए 'शीरी–फरहाद' जैसे कथानको को मंच पर लाने में वह किसी प्रकार की झिझक का अनुभव नहीं करता।''[9]

हरियाणवी सांगों को कथानक की दृष्टि से मुख्यतः हम तीन वर्गो में विभाजितकर सकते हैं :–

1. पौराणिक (धार्मिक) कथानक :– पौराणिक कथानकों में वे कथाएं शामिल होती है जो पुराणों और धार्मिक ग्रंथों से ली जाती है। इन कथानकों पर आधारित सांगों में धार्मिक कथाएं शामिल की जाती है। पौराणिक कथानकों पर बहुत से सांगों की रचना की गई है। जैसे हरिशचंद्र, नल–दमियन्ती, अंजना देवी, सत्यवान–सावित्री, सती अनुसूया, गोपी चंद्र–भरथरी, कृष्ण–जन्म, प्रहलाद भक्त, शिवाजी का ब्याह, कीचक वध, ध्रुव भगत,द्रौपदी स्वयंवर, वीजा सोरठ आदि कथानक विशेष रूप से आते है।

2. ऐतिहासिक कथानक :– ऐतिहासिक कथानकों में ऐतिहासिक घटनाओं और कथाओं पर सांगों की रचना की गई है। इसमें आल्हा–ऊदउ, पृथ्वीराज–महोम्मद गौरी, अमर सिंह राठौर, पृथ्वीराज–संयोगिता, गौरा–बादल, सुभाष चंद्र बोस, भगत सिंह, जैमल फत्ता, नरसी का भात आदि आते हैं।

3. लौकिक कथानक :– लौकिक कथानकों पर आधारित सांगों में श्रृंगार रस की अधिकता देखने को मिलती हैं। इन कथानको में आने वाले सांगों की कथाएँ सत्य घटना पर आधारित होती सकती है या किसी की सांगी की कोई कल्पना भी हो सकती है। इन कथानकों में लीलो–चमन, ढ़ोला–मारू,

बीजा–सोरठ, तोता–मैना, सीला सेठानी, चन्द्रकिरण, अजीत सिहं–राजबाला, हीर–रांझा, लैला–मंजनू, शीरी–फरहाद,सोनी–महिवाल,रूप–बसंत,

जीजा–साली, सात–पाली– एक नोवहार, चापसिंह, सुलताना–डाकु, नोबहार–धर्मदेवी, नर सुलतान, जानी–चोर, नौटंकी, सेठ ताराचंद, शाही लकड़हारा, कम्मो–कैलाश, रूपकला जादूखोरी आदि सांग आते है।[10]

सांग लोक जीवन के प्रत्येक मनोभावों से जुड़ा है। लोक जीवन में सुख व दुख समान रूप से व्याप्त रहते है। नाटक जीवन की अनुक्रति, प्रथाओं का दर्पण एवं सत्य का प्रतिबिम्ब तथा लोकवृत का अनुकरण माना गया है। यदि नाटकों में दुखांत (त्रासदी) कथानकों का समावेश न किया जाए तो नाटक जीवन से जुड़ नही पाता। इस दृष्टि से सांगों को यथार्थवादी सफलतम नाट्य कहा जा सकता है इसमें समाज में प्रायः साधु को दुराचारी, धनी को कृपण और डाकु को उदार देखा। उसके कण्ठ से गान फूट पड़ा। उसमें प्रेमियों को दीर्घकाल तक तप–साधना करने पर भी प्रणय में असफल देखा। असफलता के कारण वियोग में तड़प–तड़प कर अन्तिम क्षणो ं में प्रेमी का नाम जपते हुए सुना। उसे ट्रेजडी की वह सामग्री मिली जिसका उसने उपयोग किया है और हीर–रांझा, लैला–मजनू जैसे करूण नाटकों की रचना हुई।

सागों में प्रयोग होनेवाले उपकरण तथा साज सज्जा :–

सांग का मंच :–

लोक नाटय होने के कारण सांग का रंगमंच से घनिष्ठ सम्बध है क्योंकि किसी भी नाट्य रचना का अभिनय रंगमंच के अभाव में असंभव है। मंच व्यवस्था की दृष्टि से अगर सांग का अवलोकन करे तो हम पाएँगें की हरियाणा में सांग के लिए कोई सुसज्जित रंगमंच की आवश्यकता नही होती है सांग का रंगमंच अत्यंत साधारण और कम खर्चीला होता है।

श्री राजाराम शास्त्री के अनुसार ''आरम्भ में मंच के नाम पर किसी खुले स्थान पर दौरडा (सूत से बना लम्बा चौड़ा व मोटा कपडा) बिछाकर अथवा बिना कुछ बिछाए भी काम चला लिया जाता था। उसी स्थान पर अभिनेता को धूम–धूम कर अपना अभिनय करना होता था। वर्तमान काल में सांगो ं का रंगमंच खुले मैदान में होता है, जिसके चारों ओर दर्शक बैठे होते है मंच किवाड या तखते रखकर बनाया जाता है। कहने का अभिप्राय यही है कि सांग गयन के लिए किसी सजावटी रंगमंच की आवश्यकता नहीं होती।

प्रकाश व्यवस्था :–

पुराने समय में जब विद्युतिकरण प्रत्येक क्षेत्र के लिए सम्भव नही हो पाया था उस समय सांग में प्रकाश व्यवस्था के लिए केवल मशाल आदि का ही प्रयोग होता था। परंतु बाद में प्रकाश के लिए सांग के चारों और कुछ बल्ली या बांस के डण्डों को गाडकर उन पर गैस लटका दी जाती थी। आधुनिक समय मे ंहर गाँव में विद्युत की व्यवस्था हो जाने के कारण सांग में प्रकाश व्यवस्था करना और भी आसान हो गया है।

दर्शकों की बैठने की व्यवस्था :–

सांग किसी खुले या बड़े स्थान पर किया जाता है। सांगों में दर्शकों के बैठने के लिए किसी प्रकार की कोई कृत्रिम व्यवस्था नहीं की जाती बल्कि सांग देखने आया जन समूह धरती को ही फर्स मानकर बड़े आराम से मंच के चारों तरफ पूरी–पूरी रात बैठा रहता है तथा सांग का रस्वादन करता है। तम्बू या शामियाना नहीं लगाया जाता बल्कि आकाश ही वहाँ शामियाने का का

म करता है। सांगों में दर्शको के आराम के लिए कोई खास व्यवस्था ना होने पर भी जो एक बार आकर बैठ जाता है वो सांग के बीच में उठने की सोचता भी नही है, क्योकि सांगो ं में गाई जाने वाली रचनाएं उनके लिए अत्याधिक मर्म–स्पर्शी होती है। वह उनसे इतनी गहनता से जुड जाता है कि किसी भी बात को सुनने से वह वचित नही रहना चाहता। श्रोताओ ं पर सांग की कविताओं और संगीत का बहुत गहरा प्रभाव रहता है।

वाद्य यंत्र :–

सांग के प्रारम्भ होने से पहले ही वादक संगीतकार अपने–अपने वाद्य यंत्रो सहित मंत्र पर विराजमान हो जाते है। साजिंदे क्रमानुसार ही मंच पर विराजमान होते हैं। सांग मंण्डली के मुखिया (गुरु) के बैठने की व्यवस्था किसी कुर्सी या मुढ़ढे पर की जाती है। सभी साजिदें इसके दाहिने ओर एक क्रम में गोलाकार बैठ जाते है। सांग में बजने वाले वाद्य यंत्र–सारंगी, हारमोनियम, ढ़ोलक, नक्कारा, बीन, बांसुरी, अलगोजा, इकतारा, चिमटा, ढप, खडताल, घुंघरू इत्यादि है। सांग शुरू होने से पहले सभी वादक कलाकार(साजिंदे) अपने–अपने साजो को साधते है अर्थात सुर ताल मिलाते है।

वेशभूषा :–

सांगो ं में कोई विशेष वेशभूषा का प्रयोग नही होता ब्लकि वही वेशभूषा प्रयोग की जाती है जो यहाँ साधारण जीवन में प्रयोग की जाती है अर्थात सांगो ं में वेशभूषा सामाजिक परिवेश के अनुकूल ही होती है। पुरुष पात्र धोती–कुर्ता, साफा (पगडी) आदि का प्रयोग करते हैं। सर्दियों में बास्कट अथवा बन्द गले का कोट धारण किया जाता है।

पुरुष पात्र, विशेषकर प्रमुख पात्र हाथ में बेंत (छडी) भी रखते है। स्त्रियोचित भूमिका में पुरूष पात्र जम्फर, सलवार तथा चुन्नी (ओढनी) धारण करते है। विगत में इस कार्य हेतु घाघरी (घाघरा) आंगिया, ओढनी तथा साड़ी का प्रचलन भी रहा है। पात्र परिधान स ` नही, अपितु कथोपकथन से जाना है। अलग–अलग पात्रो ं की वेशभूषा में कोई खासअन्तर नही होता अर्थात् रानी और दासी की वेशभूषा लगभग समान ही होती है केवल पात्रों के संवाद ही उनका परिचय देते है।

श्रृगांर योजना :–

सांगो ं की श्रृंगार योजना अत्यंत साधारण होती है। सांगों में सौन्दर्य प्रसाधन पर इतना अधिक बल नही दिया जाता बल्कि साधारण प्रसाधनों का प्रयोग ही कर लिया जाता है। सांगों के प्रारम्भिक और मध्यकाल में तो केवल प्राकृतिक वस्तुओं जैसे खडिया मिट्टी, काजल तथा गेरू आदि का प्रयोग करके ही पात्र मंच पर सांग के लिए उतरतेथे। आजकल आधुनिक सौदंर्य प्रसाधनों की आसानी से उपलब्ध होने के कारण क्रीम, पाउडर, लिपिसटिक, बिन्दी आदि का प्रयोग सांगों में रूप–योजना के अन्तर्गत किया जाने लगा है।

सांग का मंच, प्रकाशन व्यवस्था, वाद्य यंत्र, वेशभूषा व श्रृंगार योजना का उपयुक्त विवचे न सांग सम्राट लखमीचंद के पुत्र तुलेराम द्वारा मंचित सांग को स्वयं देखने के पश्चात तथा इस सांग के कलाकारों के साक्षात्कार के आधार पर किया है। यह सांग मकर संक्राति के अवसर पर गुड़गांव में मंचित किया गया था।

पात्र योजना

सांग एक संगीत पर आधारित नाटयकला है और संगीत पर आधारित होने के कारण यह ही सांगो में प्रत्येक पात्र को संगीत का भी ज्ञान अवश्य होता है जब मुख्य पात्र कोई रचना गाता है तो टेक उठाते समय पूरा का पूरा दल ही गा उठता है। सांग की मंडली में 10 से 15 तक पात्रों की सख्या होती हैं। सांग में प्रत्येक पात्र में संगीत–ज्ञान के साथ–साथ एक और भी विशेषता देखने में आती है कि आवश्यकता पडने पर एक ही पात्र कई प्रकार की भूमिका निभा सकता है अर्थात् किसी भी पात्र का स्थानापन्न किया जा सकता है। डॉ० शंकर लाल यादव ने इन पात्रों को 'एवर रेडी–सैल' से उपायित किया है।[11] सांगों में स्त्री पात्र की भूमिका भी पुरुषों द्वारा ही निभाई जाती है। पुरुष पात्र ही स्त्रियों के वस्त्र धारण कर रानी, दासी, मायका, इत्यादि की भूमिकानिभाते है। सांगों में कथा के अनुसार पात्र अलग–अलग रूप में हो सकते है।

धर्मपरायण राजा, साहसी बालक, साधु, सिपाही, मंत्री, रानी दूती, दासी, पति–पत्नी, देशभक्त युवक, जान की बाजी लगाने वाले सैनिक, सच्चे मित्र आदि सांग के पात्र होते है। प्रत्येक पात्र भूमिका निभाने से पारंगत होता है। पुरुष पात्रोंमें नायक एवं नकली (विदूषक) ही दर्शको ं को अधिक प्रिय होते हैं। स्त्री पात्रों में नायिका दर्शकों के आकर्षक का केन्द्र–बिन्दु होती है। नायक के सहयोगी एवं विरोधी–मन्त्रियों एवं सखा–शत्रुओं के अतिरिक्त नायिका की सहेलिया भी सांग में रहती है।[12]

सांगों में हरियाणा की लोक संस्कृति व लोक संगीत का समन्वय होता है। हरियाणा लोक सांग, लोक संस्कृति व लोक संगीत तीनों ही त्रिवेणी के रूप में प्रयागराज का दर्शन करते हैं।

संदर्भ ग्रथं सचूी

1. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य परम्परा
2. डॉ० विजयेन्द सिंह, हरियाणा के सांगों में सौन्दर्य निरूपण पृ० सं० 69
3. डॉ० केशोराम शर्मा, गन्धर्व पुरूष पडित लख्मीचंद, पृ० सं० 65–66
4. राजाराम शास्त्री, हरियाणा का लोक साहित्य पृ० 141
5. डॉ० शशिभूषण सिंहल, सत्यपाल गुप्ता, हिन्दी साहित्य को हरियाणा का योगदान,पृ० सं० 328
6. डॉ०पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य परम्परा का आलोचनात्मक अध्ययन, पृ० 98
7. सुरेश जांगिड उदय, सांग शिरोमणी पं० मांगेराम (जीवनी एवं सांग), पृष्ठ 10
8. सप्तसिन्धु पत्रिका, मार्च–अप्रैल – 1976, पृ० सं० 90–91

9. राजाराम शास्त्री, हरियाणा की लोक मंच की कहानियाँ (1958), भूमिका, पृ० 2
10. मुलचन्द नाहरिया (लोक गायक) के साक्षात्कार के आधार पर
11. डॉ० शंकर लाल यादव, हरियाणा प्रदेश का लोक साहित्य (1960) पृ० 40
12. डॉ० पूर्णचंद शर्मा, हरियाणा की लोकधर्मी नाट्य परम्परा, 139